सब्र और उसके फ़ायदे

बिन्तुल इस्लाम
अनुवादक
एस० ख़ालिद निज़ामी

विषय-सूची

कुछ अल्फ़ाज़ के मतलब 4

दो शब्द 5

सब्र के मानी और मतलब 7

सब्र की अनेक शक्लें 10

- मुहताजी और माली नुक़सान में सब्र 10
- जिस्मानी तकलीफ़ों में सब्र 14
- जज़्बाती सदमे में सब्र 15
- लान-तान और कड़वी बातों पर सब्र 18
- दीन की सरबुलन्दी के लिए जिद्दोजुहद में सब्र 20
- नफ़सानी ख़ाहिशों के मुक़ाबले में सब्र 22
- दुआ के क़बूल होने में सब्र 23
- कामयाबी मिलने में सब्र 24

सब्र हासिल करने के ज़रिये 26

- सोचने के ढंग में बदलाव 26
- तक़दीर पर ईमान 28
- आख़िरत पर ईमान 29

सब्र के फ़ायदे और अहमियत 31

- सब्र मग़फ़िरत का ज़रिया है 31
- सब्र अल्लाह की मदद का ज़रिया है 34

आख़िरी बात 36

कुछ अल्फ़ाज़ के मतलब

इस किताब में कुछ ऐसे अल्फ़ाज़ आएँगे जिनको मुख़्तसर शक्ल में लिखा गया है । किताब पढ़ने से पहले ज़रूरी है कि उन अल्फ़ाज़ की मुकम्मल शक्ल और मतलब समझ लिया जाए ताकि किताब पढ़ते वक़्त कोइ परेशानी न हो । ऐसे अल्फ़ाज़ ये हैं :

अलै॰, अलैहि॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **'अलैहिस्सलाम'**, यानी 'उनपर सलामती हो ।' नबियों और फ़रिशतों के नाम के साथ इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए ये अल्फ़ाज़ बढ़ा देते हैं ।

रज़ि॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **'रज़ियल्लाहु अन्हु'**, इसके मायने हैं 'अल्लाह उनसे राज़ी हो !' **'सहाबी'** के नाम के साथ यह इज़्ज़त और मुहब्बत की दुआ बढ़ा देते हैं ।

सहाबी उस ख़ुशक़िस्मत मुसलमान को कहते हैं जिसे नबी सल्ल॰ से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो । **सहाबी** की जमा (बहुवचन) **सहाबा** और मुअन्नस (स्त्रीलिंग) **सहाबिय:** है ।

रज़ि॰ अगर सहाबिया के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हा** पढ़ते हैं और अगर **सहाबा** के लिए इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हुम** कहते हैं ।

सल्ल॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है —**'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम'** । इसका मतलब है 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे !' हज़रत मुहम्मद का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए यह दुआ बढ़ा देते हैं ।

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है ।)

दो शब्द

इस्लाम में अच्छे अख़लाक़ और नैतिक गुणों की अहमियत का अन्दाज़ा नबी *(सल्ल०)* की इस बात से लगाया जा सकता है :

''मुझे भेजा गया है ताकि मैं अख़लाक़ी अच्छाइयों को तमाम व कमाल तक पहुँचाऊँ ।''

यानी आप *(सल्ल०)* के दुनिया में भेजने का मक़सद लोगों के अख़लाक़ और मामलात को ठीक करना, उनके अन्दर से बुरे अख़लाक़ की जड़ें उखाड़ना और उनकी जगह अच्छे अख़लाक़ पैदा करना है ।

अल्लाह तआला ने क़ुरआन में फ़रमाया है :

''बेशक कामयाब हुआ वह जिसने अपने आपको (बद-अख़लाक़ी गन्दगी से) पाक रखा और नाकाम हुआ वह जिसने अपने आपको (बद-अख़लाक़ी की दलदल) में धँसा लिया ।'' (क़ुरआन, 91 : 9,10)

असल में दुनिया और आख़िरत की कामयाबी का दारोमदार अच्छे गुणों को अपनाने में है ।

सब्र और सहनशीलता एक ऐसा नैतिक गुण है जिसके बिना इंसान इस दुनिया में कोई बड़ा काम नहीं कर सकता; इसी लिए इस्लाम में इसको बड़ी अहमियत दी गई है और सब्र करनेवालों को कामयाबी की खुशख़बरी दी गई है ।

इस किताब में लेखिका ने क़ुरआन और हदीसों की रौशनी में सब्र की अहमियत और फ़ायदों को बहुत ही अच्छे तरीक़े से समझाने की कोशिश की है।

अल्लाह तआला से दुआ है कि वह इस कोशिश को क़बूल करे और यह किताब लोगों के लिए फ़ायदेमन्द साबित हो।

— प्रकाशक

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।)

सब्र के मानी और मतलब

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के चचाज़ाद भाई हज़रत अली *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं :

"सब्र (धैर्य) ईमान का स्रोत है, जब तक सब्र है ईमान है और जब सब्र गया तो ईमान भी जाता रहा।"

प्यारे ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र *(रज़ि.)* ने फ़रमाया :

"हर चीज़ के सवाब का अन्दाज़ा है, मगर सब्र के सवाब का कोई अन्दाज़ा नहीं है।"

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* का फ़रमान है :

"सब्र रौशनी है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

फ़िर आप *(सल्ल.)* फ़रमाते हैं —

"किसी को सब्र से ज़्यादा अच्छी और ज़्यादा कुशादगी रखनेवाली चीज़ नहीं दी गई।" (हदीस : तिरमिज़ी)

अल्लाह तआला ने अपने पाक कलाम क़ुरआन मजीद में अपने प्यारे नबी मुहम्मद *(सल्ल.)* और उनपर ईमान लानेवालों को ताकीद फ़रमाई है —

"और (ऐ नबी!) सब्र से काम लीजिए। बेशक अच्छा अंजाम डर रखनेवालों के लिए ही है।" (क़ुरआन, 11:49)

"और (ऐ नबी!) सब्र (धैर्य) से काम लीजिए, इसलिए कि अल्लाह नेकी करनेवालों का बदला कभी अकारथ नहीं करता।"

(क़ुरआन, 11:115)

"इसलिए (ऐ नबी!) सब्र कीजिए, और सब्र भी ऐसा कि जिसमें शिकायत का नाम न हो।" (क़ुरआन, 70 : 5)

"(ऐ नबी!) हमने आपपर क़ुरआन थोड़ा-थोड़ा करके उतारा है, इसलिए आप अपने रब के हुक्म पर सब्र कीजिए और इन (इस्लाम दुश्मनों) में से किसी पापी और हक़ के इनकारी की बात न मानिए।" (क़ुरआन 76 : 23-24)

"ऐ ईमानवालो! सब्र और नमाज़ से मदद लो, बेशक अल्लाह सब्र करनेवालों के साथ है।" (क़ुरआन 2 : 153)

"और अल्लाह सब्र करनेवालों से मुहब्बत करता है।" (क़ुरआन, 3 :146)

आख़िर यह कौन-सी ख़ूबी है जिसकी अल्लाह ने, अल्लाह के प्यारे रसूल (सल्ल०) ने और अल्लाह के नेक बन्दों ने इतनी ज़्यादा तारीफ़ और ख़ूबी बयान की है और इसकी ताकीद की है, और इसका हुक्म दिया है?

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो इस्तेमाल में तो बहुत ज़्यादा आते हैं, लेकिन उनके महदूद (सीमित) मानी ही मुराद लिए जाते हैं। और उनके मानी व मतलब में जितना फैलाव मौजूद होता है, उसकी तरफ़ बहुत कम ही ध्यान जाता है। सब्र भी उन्हीं शब्दों में से है। सब्र से हम आम तौर से यही मुराद लेते हैं कि जब कोई मुसीबत आ पड़े तो हाय-तौबा न की जाए, हालाँकि सब्र के मानी इससे कहीं ज़्यादा फैलाव रखते हैं।

सब्र का लुग़वी (शाब्दिक) मानी है — 'रोकना', 'सहारना', 'किसी बात पर क़ायम रहना', तकलीफ़ों की शिकायत न करना, वग़ैरा।

इस्तिलाह (परिभाषा) में 'सब्र' अपने नफ़्स को घबराहट और परेशानी से रोकने को कहते हैं। सब्र की सबसे अच्छी तारीफ़ (परिभाषा) इमाम राग़िब (रह०) ने बयान की है। कहते हैं —

"सब्र के मानी हैं अपने जी को इस तरह रोके रखना जिस तरह अक़्ल और शरीअत का तक़ाज़ा है ।"

यानी जब किसी तकलीफ़देह या दुखद स्थिति का सामना करना पड़ जाए तो जज़्बात से काम लेने के बजाय ऐसा तरीक़ा अपनाया जाए जो मुनासिब, बुद्धिसंगत हो और जो शरीअत की नज़र में भी पसन्दीदा हो ।

सब्र के सभी मानों पर ग़ौर करें तो पता चलेगा कि सब्र सिर्फ़ आ पड़नेवाली मुसीबत को बरदाश्त कर लेने का नाम ही नहीं है बल्कि हक़ (सत्य) की ख़ातिर मुसीबतों और परेशानियों में कूद पड़ने और फिर उनकी परवाह न करते हुए हक़ (सत्य) पर जमे रहने का नाम भी है ।

ऐसे ही सब्र सिर्फ़ यही नहीं कि इंसान ज़मीनी और आसमानी आफ़तों (आपदाओं) को चुपचाप सहता चला जाए, बल्कि यह भी सब्र ही की एक शक्ल है कि अपने नफ़्स (मन) की बुरी ख़ाहिशों और बुरे रुजहानों पर क़ाबू रखा जाए और किसी भी तरह का लालच, हिर्स और नफ़्स की ख़ाहिश का शिकार होकर ऐसे तरीक़े न अपनाए जाएँ जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल *(सल्ल०)* की नाराज़ी की वजह बननेवाले हों ।

इसी तरह सब्र का तक़ाज़ा सिर्फ़ यही नहीं है कि दूसरों के ज़ुल्म के मुक़ाबले में ज़ुल्म करने से बचा जाए बल्कि सब्र का एक अहम तक़ाज़ा यह भी है कि बहुत-सी मुसीबतों के होते हुए भी अपने रब से आस न तोड़ी जाए और उसकी रहमत (कृपा) पर भरोसा रखते हुए अपना अच्छा अमल ज़ारी रखा जाए, चाहे हालात देखने में कितने ही मुख़ालिफ़ क्यों न दिखाई दे रहे हों ।

सब्र की अनेक शक्लें

सब्र के बारे में मुख़्तसर तौर पर जो कुछ बयान किया जा चुका है, उसकी तफ़सील के लिए ज़रूरी है कि हम देखें कि क़ुरआन मजीद, नबी *(सल्ल०)* की हदीसें और बुज़ुर्गों के कथनों और बयानों में ज़ब्त और बरदाश्त की किस-किस शक्ल को सब्र का नाम दिया गया है और अल्लाह के नेक बन्दों ने ज़िन्दगी के उतार-चढ़ाव और सुख-दुख की धूप-छावँ में किस तरह 'साबिर' (धैर्यवान, सब्र करनेवाले) बनकर ज़िन्दगी गुज़ारी है।

मुहताजी और माली नुक़सान में सब्र

अल्लाह तआला ने इंसान को रूह और माद्दे (तत्व) से पैदा किया है। इसलिए उसकी रूह चाहे कितनी ही ऊँचाई पर क्यों न पहुँच चुकी हो, माद्दी ज़रूरतें हर हाल में उसके साथ लगी रहती हैं। उसे खाने-पीने की भी ज़रूरत है, कपड़े की भी। उसे रहने के लिए कोई ठिकाना भी चाहिए और दुख-बीमारी में इलाज की सहूलत भी। फिर हम यह भी देखते हैं कि कभी-कभी इंसान सख़्त मेहनत करने के बाद भी अपनी इन बुनियादी ज़रूरतों को सही ढंग से पूरा नहीं कर पाता और मुहताजी और भुखमरी का शिकार रहता है, या कोई अचानक हादसा उसके साधनों को ख़त्म करके उसे मुहताजी और तकलीफ़ में डाल देता है। ऐसी हालत में रोने-धोने, बेक़रारी का इज़हार करने और ख़ुदा और लोगों के ख़िलाफ़ शिकवा-शिकायत के दफ़्तर खोलने के बजाय बरदाश्त से काम लेना और आ पड़नेवाली परेशानियों को ख़ुशदिली, हिम्मत और हौसले से बरदाश्त करके सलीक़े और ख़ूबसूरती से उन्हें दूर करने की कोशिश करते रहना सब्र है।

मुहताजी और फ़ाके में सब्र करने की मिसालें ख़ुद अल्लाह के नबी *(सल्ल०)* और सहाबा किराम *(रज़ि०)* की ज़िन्दगियों में बेशुमार मौजूद हैं।

प्यारे नबी (सल्ल०) के एक प्यारे साथी हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुझे अल्लाह के रास्ते पर चलने की वजह से इतना डराया गया कि किसी को इतना नहीं डराया गया और मुझे अल्लाह के रास्ते पर चलने कि वजह से इतनी तकलीफ़ दी गई कि उतनी किसी को नहीं दी गई और मुझपर तीस रात और दिन इस तरह गुज़रे कि मेरे और (मेरे साथी) बिलाल (रज़ि०) के खाने के लिए कोई चीज़ नहीं थी जिसे कोई जिगरवाला खा सके, सिवाय उस (थोड़ी-सी) चीज़ के जिसे बिलाल की बग़ल छुपा लेती थी ।

(हदीस : तिरमिज़ी)

नबी (सल्ल०) की संगत और तालीम ने सहाबा किराम (रज़ि०) को भी मुहताजी और फ़ाक़े की हालत में बहुत सब्र करनेवाला बना दिया था । हज़रत अली (रज़ि०) अपना एक वाक़िआ बयान करते हैं कि मैं जाड़े के मौसम में एक दिन नबी (सल्ल०) के घर से निकला । इससे पहले मैंने एक कच्चा चमड़ा लिया था जिसकी दबाग़त[1] नहीं की गई थी, और जिसके बाल उड़ा दिए गए थे और उसे बीच से काटकर अपने गले में डाल लिया था और खजूर के पत्तों से कमर कसकर बाँध ली थी । उस वक़्त मुझे बहुत ज़्यादा भूख लगी हुई थी । अगर नबी (सल्ल०) के घर में खाने की कोई चीज़ होती तो मैं उसमें से खा लेता । (मगर वहाँ कुछ न था) इसलिए मैं निकला कि कुछ तलाश करूँ । मेरा गुज़र एक यहूदी के पास से हुआ जो अपने माल के पास था और अपने रहट से पानी खींच रहा था । मैंने दीवार की टूटी हुई जगह से उसे झाँककर देखा । उसने कहा : "ऐ एराबी! तुझे क्या काम है? क्या तुझे मंज़ूर है कि एक डोल पानी एक खजूर के बदले में निकाल दे?"

मैंने कहा : "हाँ (मुझे मंज़ूर है) दरवाज़ा खोल ताकि मैं अन्दर आऊँ ।"

"फिर उसने दरवाज़ा खोल दिया और मैं अन्दर चला गया । उसने मुझे डोल दे दिया । जैसे ही मैं एक डोल पानी खींच लेता, वह मुझे एक खजूर दे देता, यहाँ तक कि जब मेरी मुट्ठी खजूरों से भर गई तो मैंने डोल छोड़ दिया

1. कच्चे चमड़े को नमक वग़ैरा डालकर उसे इस्तेमाल के लाइक़ बनाने के अमल को दबाग़त कहते हैं ।

और कहा कि बस मेरे लिए ये बहुत हैं। फिर मैंने वे खजूरें खा लीं।''

(हदीस : तिरमिज़ी)

इसी तरह हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) की एक रिवायत में बयान हुआ है कि लोगों पर भूख का बहुत ग़लबा हुआ तो नबी (सल्ल.) ने उन्हें एक-एक खजूर (खाने को) दी। (हदीस : तिरमिज़ी)

तिरमिज़ी में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) की एक और रिवायत बयान हुई है जिससे पता चलता है कि वे नेक लोग मुफ़लिसी और तंगी के सबब कितनी ज़्यादा तकलीफ़ें बरदाश्त करते रहते थे।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) बयान करते हैं कि अहले सुफ़्फ़ा[1] मुसलमानों के मेहमान होते थे। उनके न बाल-बच्चे थे और न उनके पास माल था जिससे मदद लेते। उस ख़ुदा की क़सम जिसके सिवा कोई इबादत के लाइक़ नहीं! मैं भूख की शिद्दत की वजह से अपना जिगर ज़मीन से लगा देता था और भूख की वजह से अपने पेट पर पत्थर बाँध लेता था। एक दिन मैं उस रास्ते पर आ बैठा जिससे लोग आते जाते थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) मेरे पास से गुज़रे तो मैंने उनसे क़ुरआन की आयतों में से एक आयत पूछी और पूछने का मेरा मक़सद सिर्फ़ यह था कि मुझे अपने साथ ले जाएँ (और कुछ खिला दें), मगर वे गुज़र गए और ऐसा न किया। फिर उमर (रज़ि.) गुज़रे। मैंने उनसे (भी) क़ुरआन की आयतों में से किसी एक आयत के बारे में सवाल किया, और सिर्फ़ इसी लिए सवाल किया कि वे (मेरी हालत को समझ जाएँ और कुछ खिलाने के लिए) मुझे साथ ले जाएँ, मगर वे भी गुज़र गए और ऐसा न किया। फिर अबुल क़ासिम यानी अल्लाह के रसूल (सल्ल.) गुज़रे और जब मुझे देखा तो मुस्करा दिए और फ़रमाया :

''अबू हुरैरा!''

मैंने जवाब दिया : ''हाज़िर हूँ ऐ अल्लाह के रसूल!''

नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया : ''मेरे साथ आओ।''

---

1. अहले सुफ़्फ़ा (सुफ़्फ़ावाले) — मदीना शहर में बहुत-से मुसलमान दूर-दराज़ इलाक़ों से नबी (सल्ल.) से दीन सीखने के लिए एक चबूतरे पर रहते थे, उन्हें अहले सुफ़्फ़ा कहा जाता है।

यह कहकर आप *(सल्ल०)* चल पड़े और मैं आप *(सल्ल०)* के पीछे-पीछे चला। आप *(सल्ल०)* अपने घर में दाख़िल हुए। मैंने आप *(सल्ल०)* से अन्दर आने की इजाज़त माँगी तो आपने इजाज़त दे दी। घर में आप *(सल्ल०)* ने दूध का एक प्याला देखा। आप *(सल्ल०)* ने घरवालों से पूछा : "तुम लोगों के पास दूध का यह प्याला कहाँ से आया?" जवाब दिया गया कि फ़लाँ शख़्स ने तोहफ़े के तौर पर भेजा है। इसपर आप *(सल्ल०)* ने फ़रमाया:

"अबू हुरैरा !"

मैंने जवाब दिया : "हाज़िर हूँ ऐ अल्लाह के रसूल!"

आप *(सल्ल०)* ने फ़रमाया : "सुफ़्फ़ावालों के पास जाओ और उन्हें बुला लाओ।"

रिवायत में आगे चलकर बयान हुआ है कि जब सुफ़्फ़ावाले आ गए तो नबी *(सल्ल०)* ने हज़रत अबू हुरैरा *(रज़ि०)* ही को हुक्म दिया कि इन्हें दूध पिलाओ।

हज़रत अबू हुरैरा *(रज़ि०)* बयान करते हैं कि मैंने प्याला लिया और एक-एक शख़्स को पकड़ाने लगा। हर शख़्स पी लेता, यहाँ तक कि उसका पेट भर जाता और वह उसे वापस दे देता और मैं उसे फ़िर आगे किसी और को पकड़ा देता, यहाँ तक कि मैं (सबको पिलाता-पिलाता) उस प्याले समेत अल्लाह के रसूल *(सल्ल०)* तक जा पहुँचा। सब लोगों का पेट भर चुका था। फिर अल्लाह के रसूल *(सल्ल०)* ने उस प्याले को पकड़ा और उसे अपने हाथ पर रखा, फिर सिर उठाया और मुस्कुराकर फ़रमाया :

"ऐ अबू हुरैरा! इसे पियो।"

मैंने उसे पिया।

आप *(सल्ल०)* ने फिर फ़रमाया : "(और) पियो।"

इस तरह मैं पीता रहा और आप (बार-बार) फ़रमाते रहे कि (और) पियो।

फिर मैंने अर्ज़ किया : "उस ज़ात की क़सम जिसने आपको हक़ के साथ भेजा है! अब मेरे पेट में जगह नहीं रही।"

फिर आप (सल्ल॰) ने प्याला पकड़ लिया और अल्लाह तआला की तारीफ़ फ़रमाई और बिसमिल्लाह कहकर वह दूध (खुद) पी लिया।

(हदीस : तिरमिज़ी)

जिस्मानी तकलीफ़ों में सब्र

सब्र की एक और शक्ल वह है जो इंसान दुख, बीमारी, जिस्म के किसी हिस्से (अंग) के बेकार हो जाने या और किसी जिस्मानी तकलीफ़ पहुँचने पर करता है। नबियों (अलै॰) की ख़ास ख़ूबियों में से एक ख़ूबी 'सब्र' भी रही है। और जिस्मानी तकलीफ़ों और दुखों के सिलसिले में अल्लाह के नबी हज़रत अय्यूब (अलै॰) का सब्र ख़ास तौर पर मशहूर है। उनकी ज़िन्दगी में दूसरी आज़माइशों के अलावा भयंकर तकलीफ़ वह जिस्मानी बीमारी भी आई मगर हर आज़माइश ने उनको सब्र करनेवाला और शुक्र अदा करनेवाला ही पाया। उन्होंने अपनी किसी तकलीफ़ की शिकायत न की और दुख-दर्द की इस इन्तिहा में भी, सारे जहानों के रब, सिर्फ़ अल्लाह के रहम व करम ही को आवाज़ें देते रहे :

> "और (ऐ नबी!) अय्यूब की हालत को याद कीजीए जबकि उसने अपने रब को पुकारा कि मझे यह तकलीफ़ पहुँच रही है और आप सब मेहरबानों से ज़्यादा मेहरबान हैं।" (क़ुरआन, 21 : 83)

अल्लाह तआला हज़रत अय्यूब (अलै॰) के बेमिसाल सब्र की तारीफ़ फ़रमाते हुए कहते हैं :

> "बेशक हमने उसे सब्र करनेवाला पाया, क्या ही अच्छा बन्दा था कि! (अल्लाह की तरफ़) बहुत रुजूअ होनेवाला था।"
>
> (क़ुरआन, 38 : 44)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया :

"अल्लाह तआला फ़रमाता है कि मैं जब किसी की दो प्यारी चीज़ें (यानी आँखें) ले लेता हूँ और वह (उसे अल्लाह की तरफ़ से आनेवाली एक आज़माइश समझकर उसपर) सब्र करता और सवाब का उम्मीदवार रहता है तो मैं इसपर राज़ी नहीं हूँ कि उसे जन्नत से कम कोई सवाब दूँ।" (हदीस : तिरमिज़ी)

जज़्बाती सदमे में सब्र

सब्र की एक और शक्ल वह बरदाश्त और ज़ब्त है जो इनसान किसी जज़्बाती तकलीफ़ या सदमे के पहुँचने पर करता है, और यह तकलीफ़ भी जिस्मानी तकलीफ़ से कम नहीं होती। किसी प्यारी हस्ती का जीते-जी बिछड़ जाना या किसी अपने क़रीबी रिश्तेदार का मौत का शिकार होकर हमेशा के लिए नज़रों से ओझल हो जाना, या किसी बहुत ही प्यारे इनसान का मुहब्बत और ख़ैरख़ाही के जवाब में नफ़रत और बदख़ाही का सुलूक करना, ये सब वे जज़्बाती धक्के हैं दो ग़मग़ीन दिल के लिए सख़्त तकलीफ़ की वजह बनते हैं। जुदाई, मौत और बेमुरव्वती की ये चोटें कभी-कभी चोटों से भी ज़्यादा दर्दनाक साबित होती हैं। अल्लाह तआला के नेक बन्दों ने सब्र के इस मैदान में भी बड़ी-बड़ी रौशन और यादगार निशानियाँ छोड़ी हैं।

जब अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत यूसुफ़ (अलै.) को उनके हासिद (ईर्षालु) भाइयों ने कुएँ में डाल दिया और वहाँ से एक क़ाफ़िला उन्हें उस कुँए से निकाल कर मिस्र की तरफ़ ले गया तो उनके बाप हज़रत याक़ूब (अलै.) अपने प्यारे बेटे की जुदाई में इतना ज़्यादा दुखी रहते थे जिसको क़ुरआन ने उसे यों बयान किया है:

"और ग़म के मारे उसकी आँखें सफ़ेद पड़ गई थीं और वह जी ही जी में घुटा जा रहा था।" (क़ुरआन 12 : 84)

मगर इसके बावजूद न उन्होंने न कभी बेसबरी दिखाते हुए रोना-धोना किया और न ख़ुदा और लोगों के ख़िलाफ़ शिकायतों के अम्बार लगाए। शुरू में जब उनेके दूसरे बेटे, उनके प्यारे बेटे हज़रत यूसुफ़ की क़मीज़ पर झूठ-मूठ का ख़ून लगाकर ले आए और बताया कि उसे भेड़िये ने खा लिया है तो उस वक़्त भी

उन्होंने यही फ़रमाया :

"बल्कि तुमने अपने दिल से एक बात बना ली है । इसलिए सब्र ही करूँगा जिसमें शिकायत का नाम नहीं होगा ।" (क़ुरआन 12 : 18)

फिर एक लम्बे समय तक दुख-र्दद सह चुकने के बाद जब वे उसी बिछडे हुए प्यारे बेटे के एक दुसरे भाई की जुदाई का शिकार हुए और जिन हासिद (ईषालु) बेटों के हाथों पहला सदमा सहा था, उन्हीं ने आकर दुसरे की जुदाई की भी ख़बर थीतो फिर दोबारा उन्होंने वही फ़रमाया:

"बल्कि तुमने अपने दिल से एक बात बना ली है । इसलिए सब्र ही करुँगा जिसमें शिकायत का नाम नहीं होगा ।" (क़ुरआन 12 : 83)

फिर ग़म की शिद्दत की वजह से उन्होंने दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया और कह उठे:

"हाय अफ़सोस, यूसुफ़ की जुदाई पर!" (क़ुरआन, 12 : 84)

इसपर घर के लोग बिगड़ पड़े हुए और कहने लगे :
"अल्लाह की क़सम! आप तो हमेशा यूसुफ़ ही की याद में लगे रहेंगे, यहाँ तक कि घुलकर रह जाएँगे या बिलकुल ही मर जाएँगे ।"
(क़ुरआन, 12 : 85)

इसपर अल्लाह के उन सब्र करनेवाले और शुक्रगुज़ार नबी ने जो कुछ फ़रमाया वह सिर्फ़ यह था :

"मैं तो अपनी परेशानी और अपने ग़म की फ़रियाद सिर्फ़ अल्लाह ही से करता हूँ और अल्लाह से जैसा मैं वाक़िफ़ हूँ तुम नहीं हो ।"
(क़ुरआन, 12 : 86)

यह तो एक नबी का सब्र था और नबी (अलै.) अल्लाह की मख़लूक़ के सबसे बेहतर, सबसे पसन्दीदा और सबसे क़ाबिल गिरोह समझे जाते हैं । मगर नबी (सल्ल.) की संगत और तालीम ने सहाबा और सहाबियात (रज़ि.) को भी सब्र के उस मक़ाम पर पहुँचा दिया था जिसके वाक़िआत सुनकर दिल हैरत में पड़ जाता है ।

हदीस की किताब 'सहीह मुस्लिम' में नबी (सल्ल॰) के एक सहाबी हज़रत अबू तलहा (रज़ि॰) और उनकी बीवी हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि॰) का एक वाक़िआ बयान हुआ है कि उनका एक बच्चा बीमार था। हज़रत अबू तलहा (रज़ि॰) बाहर गए हुए थे कि बच्चे की मौत हो गई। हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि॰) ने घरवालों को मना कर दिया कि जब तक मैं ख़ुद अबू तलहा को बच्चे की मौत की ख़बर न दूँ, कोई और उन्हें यह बात न बताए। जब हज़रत अबू तलहा (रज़ि॰) ने आकर बच्चे के बारे में मालूम किया तो उन सब्र करनेवाली बीवी ने जवाब दिया कि वह अब पहले से ज़्यादा आराम से है। फिर उन्होंने हज़रत अबू तलहा (रज़ि॰) को रात का खाना खिलाया और जब कुछ और वक़्त गुज़र गया तो उनसे सवाल किया : "ऐ अबू तलहा! अगर कुछ लोग किसी घराने को कोई चीज़ क़र्ज़ के तौर पर दें और फिर उनसे अपनी वह चीज़ वापस माँगें तो क्या घरवाले उसे देने से इंकार कर सकते हैं?"

हज़रत अबू तलहा (रज़ि॰) ने जवाब दिया : "नहीं!" इस तरह अबू तलहा (रज़ि॰) के ज़ेहन को पेश आनेवाले सदमे को सब्र के साथ सहने के लिए तैयार करके हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि॰) ने उन्हें ख़बर दी कि अल्लाह ने भी अपनी अमानत (बेटा) वापस ले ली है।

इस सिलसिले में यह बात ध्यान में रखना ज़रूरी है कि बहुत ज़्यादा ग़म की वजह से आँसू बहा लेना बेसब्री नहीं है क्योंकि आँसू आँखों से गिरते तो हैं मगर उनका स्रोत हक़ीक़त में दिल की कैफ़ियतें ही होती हैं, और दिल वह चीज़ है जिसपर इख़्तियार नहीं होता। हाँ, यह अलबत्ता बेसब्री है कि इंसान नामुनासिब और ग़ैर-शरई तरीक़े से ज़बान चलाए और ऐसी हरकतें करे जिसे शरीअत ने नापसन्द ठहराया है। मिसाल के तौर पर — नौहा करना, सीना पीटना, मुँह पर तमांचे मारना, गरीबान फाड़ना और ऐसी ही दूसरी जाहिलाना हरकतें करना जो जाहिल क़ौमों में पाई जाती हैं।

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया :

"वह हममें से नहीं है जो (किसी की मौत पर) गाल पीटे और गरीबान

फाड़े और जाहिलियत की पुकार पुकारे ।''

(हदीस : बुख़ारी)

बुख़ारी ही की एक रिवायत में हज़रत अबू मूसा (रज़ि.) के बेटे हज़रत अबू बरदा (रज़ि.) बयान करते हैं कि जब हज़रत अबू मूसा (रज़ि.) बीमार पड़े तो उनपर बेहोशी तारी हो गई । इस हाल में उनका सिर उनके घर की किसी औरत की गोद में था । वह चिल्लाई, और हज़रत अबू मूसा (रज़ि.) का कमज़ोरी से यह हाल था कि उसे मना नहीं कर सकते थे । जब कुछ ठीक हुए तो बोले कि मैं उससे नफ़रत का इज़हार करता हूँ जिससे अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने नफ़रत का इज़हार किया और बताया कि नबी (सल्ल.) ने चीख़-चीख़कर रोनेवाली, गरीबान फाड़नेवाली और (मातम मनाने के लिए) सिर मुंडाने वाली औरत से नफ़रत का इज़हार किया । (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

लान-तान और कड़वी बातों पर सब्र

सब्र की एक और शक्ल यह है कि लोगों की ज़बानों के तीरों को सुकून और सलीक़े से बर्दाश्त किया जाए । अक़्लमन्दों ने कहा है कि तलवार का लगाया हुआ ज़ख़्म भर जाता है, मगर ज़बान का लगाया हुआ ज़ख़्म नहीं भरता । हक़ीक़त यह है कि लोगों के ताने और झूठी बातें, हँसी और मज़ाक़ उड़ाने, झूठे इलज़ाम लगाने, पीठ पीछे बुराइयाँ करने, लांछन और तोहमत को सुनकर सह जाना बड़ी हिम्मत और हौसले का काम है, और जो इंसान अपने अन्दर यह हिम्मत और हौसला पैदा कर ले वह बेशक सब्र करनेवालों में शामिल हो जाता है । अल्लाह तआला का फ़रमान है :

> ''(मुसलमानो!) तुम्हें माल और जान दोनों की आज़माइशें पेश आकर रहेंगी और तुम यक़ीनन उनसे, जिन्हें तुमसे पहले किताब दी गई थी और मुशरिकों से बहुत-सी तकलीफ़देह बातें सुनोगे । अगर इन सब हालतों में तुम सब्र करो और अल्लाह से डरते रहो तो यह बड़े हौसले का काम है ।'' (क़ुरआन, 3 : 186)

किताबवालों और मुशरिकों से तो तकलीफ़देह बातें सुननी ही पड़ती हैं,

मगर बड़े अफ़सोस की बात है कि कभी-कभी ये तकलीफ़देह बातें ख़ुद अपने मुसलमान बहन-भाइयों और क़रीबी रिश्तेदारों से भी सुननी पड़ती हैं । उनके मामले में भी कि अगर कोई शख़्स अल्लाह की ख़ुशी को सामने रखते हुए इन तकलीफ़देह बातों पर सब्र कर जाए और आपसी ताल्लुक़ात को तोड़ने से बचा रहे तो यह बड़ी ही हिम्मत और नेकी और हौसले का काम है ।

अल्लाह तआला ने क़ुरआन में नबी (सल्ल॰) को हिदायत देते हुए फ़रमाया है:

"और (ऐ नबी!) अपने रब के नाम का ज़िक्र किया करो और सबसे कटकर उसी के हो रहो । वह पूर्व और पश्चिम का रब है, उसके सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं, इसलिए उसी को अपना कारसाज़ बनाओ, और जो बातें ये विरोधी लोग बना रहें हैं उनपर सब्र करो और ख़ूबसूरती के साथ उनसे अलग हो जाओ ।"

(क़ुरआन, 73 : 8-10)

क़ुरआन मजीद में एक दूसरी जगह भी नबी (सल्ल॰) को विरोधियों की तकलीफ़देह बातों पर सब्र करने की हिदायत दी गई है :

"इसलिए (ऐ नबी!) जो बातें ये लोग बनाते हैं उनपर सब्र करो और अपने रब की प्रशंसा की तस्बीह (गुणगाण) करते रहो, सूरज निकलने से पहले और सूरज डूबने से पहले ।" (क़ुरआन, 50 : 39)

एक अन्य जगह भी यही बात कही गई है:

"इसलिए जो कुछ वे कहते हैं उसपर सब्र कीजिए और अपने रब का उसकी प्रशंसा के साथ गुणगान कीजिए, सूर्य निकलने से पहले और उसके डूबने से पहले, और रात की घड़ियों में तस्बीह किया कीजिए और दिन के किनारों पर भी ताकि आपको ख़ुशी नसीब हो ।"

(क़ुरआन, 20 : 130)

दीन की सरबुलन्दी के लिए जिद्दोजुहद में सब्र

सब्र की सबसे अच्छी शक्लों में एक शक्ल यह है कि अल्लाह के दीन पर क़ायम रहने और उसे दुनिया में सरबुलन्द करने की कोशिशों के रास्ते में जो तकलीफ़ें और परेशानियाँ आएँ, उन्हें हिम्मत से बर्दाश्त किया जाए और अपने महान मिशन की राह में सुस्ती न दिखाई जाए। अल्लाह तआला फ़रमाता है :

> "ऐ ईमानवालो! सब्र से काम लो। और बातिल-परस्तों के मुक़ाबले में बढ़-चढ़कर सब्र दिखाओ। (सत्य की सेवा के लिए) जुटे और डटे रहो और अल्लाह से डरते रहो ताकि तुम्हें कामयाबी नसीब हो।"
>
> (क़ुरआन, 3 : 200)

दीन को फैलाना और इनसानों की इस्लाह (सुधार) के लिए कोशिश करना दुनिया के सबसे मुश्किल कामों में से है। इस रास्ते में क़दम-क़दम पर काँटों से उलझना और कभी-कभी ज़िन्दगी की हर प्यारी चीज़ से हाथ धोना पड़ता है। यह काम कितना कठिन है इसका अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि सहाबा किराम *(रज़ि॰)* जैसे धैर्यवान और साबिर भी कभी-कभी घबरा उठते थे।

हज़रत ख़ब्बाब बिन अरत *(रज़ि॰)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल॰)* अपनी चादर का तकिया बनाए हुए काबा के साये में बैठे हुए थे कि हमने आप *(सल्ल॰)* से अपनी परेशानियों और मुसीबतों की शिकायत की और अर्ज़ किया कि आप हमारे लिए अल्लाह से मदद क्यों नहीं माँगते, आप हमारे लिए दुआ क्यों नहीं करते। इसपर आप *(सल्ल॰)* ने फ़रमाया कि तुमसे पहले ऐसे लोग हुए हैं कि (ख़ुदा के दीन पर चलने और उसे फैलाने के जुर्म में) एक शख़्स को पकड़ा जाता, फिर उसके लिए ज़मीन में गढ़ा खोदा जाता और उसे उसमें बिठाया जाता, फिर आरा लाया जाता और उसके सिर पर चलाकर उसे दो टुकड़े कर दिया जाता और उसपर लोहे की कंघियाँ चलाई जातीं जो उसके गोश्त और हड्डियों को चीर डालतीं। लेकिन यह ज़ालिमाना बर्ताव भी उसे उसके दीन से न रोकता।

फिर नबी *(सल्ल॰)* ने फ़रमाया कि अल्लाह की क़सम! यह दीन पूरा होकर रहेगा यहाँ तक कि एक मुसाफ़िर 'सनआ' से 'हज़रमौत' तक जाएगा और उसे अल्लाह के सिवा किसी का डर न होगा। (हदीस : बुख़ारी)

चूँकि काम बहुत ही कठिन था इसलिए इंसान होने के नाते ये नेक और सब्र करनेवाले भी शिकायत कर बैठते, वरना जहाँ तक इनके सब्र और जमाव का ताल्लुक़ था, इन्हीं ख़ब्बाब बिन अरत (रज़ि॰) ने दीन के रास्ते में ऐसी-ऐसी दिल दहला देनेवाली तकलीफ़ें बर्दाश्त की हैं कि उनका ज़िक्र पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। एक दिन इस्लाम के दुश्मन उनको पकड़कर ले गए और कोयले दहका कर उनपर उनको चित लिटा दिया। फिर एक आदमी ने छाती पर पैर रख दिया कि करवट न ले सकें। वे उसी तरह उन दहकते हुए कोयलों पर पड़े रहे, यहाँ तक कि वे कोयले उनकी पीठ के नीचे ही ठण्डे हो गए।

इस घटना के बहुत दिनों के बाद जब एक दिन हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि॰) ने हज़रत उमर (रज़ि॰) को यह क़िस्सा सुनाया और अपनी पीठ खोलकर दिखाई तो हज़रत उमर (रज़ि॰) ने देखा कि कोयलों पर जलते रहने की वजह से पीठ ऐसी सफ़ेद पड़ गई थी जैसे सफ़ेद दाग़। (तबक़ात इब्ने सअद)

मर्द तो मर्द, औरतों की बर्दाश्त की ताक़त भी हैरतअंगेज़ थी। जब हज़रत उम्मे शुरैक (रज़ि॰) ने इस्लाम क़बूल किया तो उनके रिश्तेदार उन्हें धूप में खड़ा कर देते और इस हालत में रोटी के साथ शहद जैसी गरम चीज़ खिलाते थे और पानी नहीं पीने देते थे। जब इस तरह तीन दिन गुज़र गए तो उन ज़ालिमों ने उनसे कहा कि जो दीन तुमने अपना रखा है उसे छोड़ दो। तकलीफ़ की शिद्दत की वजह से वह इतनी ज़्यादा बद-हवास हो चुकी थीं कि इन बातों का मतलब भी न समझ सकीं। तब लोगों ने आसमान की तरफ़ उँगली उठाकर समझाया कि उनके कहने का मतलब क्या है। इसपर वह बोल उठीं :

"अल्लाह की क़सम! मैं तो इसी अक़ीदे (मज़हब) पर क़ायम हूँ।"

(तबक़ात इब्ने सअद)

दीन की ख़िदमत करनेवालों ने सिर्फ़ इस्लाम के दुश्मनों ही के हाथों सितम नहीं उठाए, बल्कि कई बार अपनों ने भी उनके साथ ग़ैरों से भी बढ़कर दुश्मनी की। मिल्लते इस्लामिया की चौदह-पंद्रह सौ साल से ज़्यादा की ज़िन्दगी में बहुत से उतार-चढ़ाव आए, मगर एक चीज़ जो नबी (सल्ल॰) के मुबारक दौर से लेकर आज तक लगातार चली आ रही है वह यह है कि बुरे से बुरे ज़माने में भी ऐसे

जान न्यौछावर करनेवाले पैदा होते रहे हैं जिन्होंने पूरे ख़ुलूस से दीन की ख़िदमत को अपना मक़सद बनाए रखा और पूरी-पूरी ज़िन्दगियाँ उसकी सरबुलन्दी की राह में खपा दीं । जिस-जिस दौर में और जहाँ-जहाँ ऐसे जाँनिसार पैदा हुए, आज़माइशों और तकलीफ़ों ने बढ़-बढ़कर उनके रास्ते रोकने की कोशिश की और उन्हें क़दम-क़दम पर सब्र और इस्तिक़ामत (दृढ़ता) की ज़रूरत महसूस होती रही।

कभी उनके जिस्मों को तकलीफ़ें दी गईं, कभी उनका ख़ून बहाया गया, कभी उनकी इज़्ज़तें लूटी गईं, कभी उनके माली नुक़सान किए गए और कभी उन्हें क़ैद व बन्द की तकलीफ़ें दी गईं । मगर कोई ज़ुल्म व सितम का तरीक़ा भी इतना असरदार न हो सका कि इस सिलसिले को पूरे तौर पर ख़त्म कर सकता । आज के दौर में भी, जिसे बहुत ही माद्दा-परस्त ज़माना कहा जाता है, वह वफ़ादार गिरोह पूरे ख़ुलूस के साथ अपने काम में जुटा हुआ है और दुनिया के जिस-जिस हिस्से में भी वे अपनी जिद्दोजुहद को जारी रखे हुए हैं, सब्र और मज़बूती की रौशनी हर जगह उनकी एक लाज़िमी ज़रूरत है ।

नफ़सानी ख़ाहिशों के मुक़ाबले में सब्र

इंसान को तकलीफ़ों और मुसीबतों में डालनेवाले सिर्फ़ उसके हम-जिंस (सह-जाती) ही नहीं होते बल्कि अपने जिस्म के अन्दर छुपी हुई वह भावना, जो बुराई पर उभारे, भी उसकी बहुत बड़ी दुश्मन है । यह दुश्मन उसके दिल में ग़लत क़िस्म की ख़ाहिशें पैदा करता है और उसे नेकी के रास्ते से भटकाकर गुनाहों के गढ़े में जा गिराने के लिए हर वक़्त कोशिश करता रहता है ।

अपनी इन नफ़सानी और ग़लत क़िस्म की ख़ाहिशों पर क़ाबू पाना और उन्हें अपने ऊपर हावी न होने देना भी बहुत बड़ा सब्र है।

दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) फ़रमाते हैं :

"सब्र का दामन पकड़ लो, याद रखो कि सब्र दो क़िस्म का होता है, एक ऊँची क़िस्म का सब्र और दूसरा नीची क़िस्म का सब्र । मुसीबतों में सब्र करना अच्छा है लेकिन उन बातों से बचना जिनसे अल्लाह

तआला ने रोका है ऊँचे दरजे का सब्र है । यह भी याद रहे कि सब्र ईमान का सुतून (स्तंभ) है और यह इसलिए कि अल्लाह तआला का डर और ख़ौफ़ सबसे ऊँचे दरजे की भलाई है और अल्लाह का डर सब्र ही के ज़रिये मुमकिन है ।''

हज़रत अली *(रज़ि.)* का फ़रमान है :

''सब्र की दो क़िस्में हैं – एक नापसन्दीदा चीज़ के आ पड़ने पर सब्र और (दूसरे) प्यारी चीज़ के न मिलने पर सब्र ।''

दुआ के क़बूल होने में सब्र

सब्र की एक ख़ास शक्ल यह भी है कि जब इंसान अल्लाह तआला से किसी प्यारी चीज़ की तलब के लिए या किसी नापसन्दीदा सूरते हाल से बचने के लिए दुआ करे तो उसके क़बूल होने के लिए जल्दी मचाना शुरू न कर दे । इस बात की तसल्ली रखनी चाहिए कि जब भी इंसान अपने रब से किसी जाइज़ ख़ाहिश की तलब करता है तो वह उसकी फ़रयाद को ज़रूर सुनता है । अल्लाह फ़रमाता है :

''और (ऐ नबी!) मेरे बन्दे अगर तुम से मेरे बारे में पूछें तो उन्हें बता दो कि मैं उनसे क़रीब ही हूँ, पुकारनेवाला जब मुझे पुकारता है तो (उसकी पुकार सुनता और) जवाब देता हूँ ।'' (क़ुरआन, 2 : 186)

बाक़ी रही उस दुआ की अमली क़बूलियत जो दुआ माँगनेवाले को अपनी आँखों से नज़र भी आ जाए तो उसका कोई ख़ास वक़्त या ख़ास शक्ल अल्लाह तआला के यहाँ तय होती है तो उस वक़्त के पहुँचने या उस मुश्किल के नज़र आने का सब्र से इन्तिज़ार करना चाहिए और ज़रा देर हो जाने पर तंगदिल होकर दुआ माँगना छोड़ नहीं देना चाहिए क्योंकि यह भी बेसब्री की एक शक्ल है ।

हज़रत अबू हुरैरा *(रज़ि.)* से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि तुममें से हर आदमी की दुआ क़बूल होती है शर्त यह है कि वह

जल्दबाज़ी से काम न ले, (यानी यह न) कहे कि मैंने दुआ की मगर मेरी दुआ क़बूल ही नहीं हुई । (हदीस : बुख़ारी)

इसी हदीस से मिलती-जुलती एक और हदीस हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने बयान की है कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल.) ने फ़रमाया कि जो शख़्स भी ख़ुदा से दुआ करता है उसकी दुआ क़बूल हो जाती है । अब या तो (उसकी मुराद) दुनिया में ही जल्दी से उसे दे दी जाती है या उसे उस (दुआ माँगनेवाले) के लिए आख़िरत के सवाब की शक्ल में जमा कर दिया जाता है । या जितनी उसने दुआ की होती है उसके बराबर उसके उतने ही गुनाह ख़त्म कर दिए जाते हैं, शर्त यह है कि वह किसी गुनाह की या रिश्ते तोड़ने की दुआ न करे या जल्दबाज़ी से काम न ले ।

(इसपर) सहाबा (रज़ि.) ने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! यह जल्दबाज़ी से काम लेना कैसा होता है? आप (सल्ल.) ने फ़रमाया कि दुआ माँगनेवाला यह कहना शुरू कर दे कि मैंने अपने रब से दुआ की थी मगर उसने मेरी दुआ क़बूल ही नहीं की । (हदीस : तिरमिज़ी)

कामयाबी मिलने में सब्र

सब्र की ऊपर लिखी शक्लें तो वे हैं जिनका ताल्लुक़ बेचैनियों, परेशानियों और ग़मों से है, मगर सब्र की एक अच्छी शक्ल वह भी है जो कामयाबी और जीत के वक़्त इख़्तियार की जाती है । वह यह कि जब इंसान को कोई कामयाबी नसीब हो तो सुकून, सलीक़े और नम्रता का रवैया अपनाए और घमण्ड में फूलकर कुप्पा न हो जाए और न अपने को बड़ा समझकर नीच हरकतें करने लग जाए ।

हक़ीक़त यह है कि जिस तरह अल्लाह तआला ग़म और महरूमियाँ देकर आज़माता है उसी तरह ख़ुशी और कामयाबी देकर भी आज़माता है । सब्र करनेवाला वह है जो ग़म और पेरशानियों की हालत में ख़ुदा की रहमत से मायूस न हो और ख़ुशी और कामयाबी की हालत में भी आपे से बाहर न हो जाए।

कहने का मतलब यह है कि शब्द 'सब्र' अपने अन्दर मानी की एक दुनिया

रखता है । क़ुरआन में अल्लाह तआला का फ़रमान है :

> "और अल्लाह और उसके रसूल का हुक्म मानो और आपस में न झगड़ो, वरना तुम्हारे अन्दर कमज़ोरी पैदा हो जाएगी और तुम्हारी हवा उखड़ जाएगी । सब्र से काम लो, यक़ीनन अल्लाह सब्र करनेवालों के साथ है।" (क़ुरआन, 8 : 46)

क़ुरआन के एक बड़े आलिम इस आयत का मतलब बयान करते हुए फ़रमाते हैं:

- अपने जज़्बात और ख़ाहिशों को क़ाबू में रखो ।
- जल्दबाज़ी, घबराहट, डर, लालच और नामुनासिब जोश से बचो ।
- ठण्डे दिल और जँची-तुली निर्णय-शक्ति से काम लो ।
- ख़तरे और मुश्किलें सामने हों तो तुम्हारे क़दम न थरथराएँ ।
- भड़कानेवाले मौक़े सामने आएँ तो ग़ुस्से और जोश में तुमसे कोई नामुनासिब हरकत न हो ।
- मुसीबतों का हमला हो और हालात बिगड़ते नज़र आ रहे हों तो बेचैनी में तुम्हारे होश गुम न हो जाएँ ।
- मक़सद हासिल होने की लगन में बेक़रार होकर या किसी अधूरी तदबीर को सरसरी नज़र में कारगर देखकर तुम्हारे इरादे कमज़ोर न हो जाएँ ।
- और अगर दुनिया के फ़ायदे और नफ़्स की लज़्ज़तों की ख़ाहिशें तुम्हें अपनी तरफ़ लुभा रही हों तो उनके मुक़ाबले में भी तुम्हारा मन इतना कमज़ोर न हो कि बेइख़्तियार उनकी तरफ़ खिंच जाओ ।

ये सारी बातें सिर्फ़ एक शब्द 'सब्र' में छिपी हैं । और अल्लाह तआला फ़रमाता है कि जो लोग इन सारी हैसियतों से सब्र करनेवाले हों, मेरी मदद उन्हीं को हासिल है ।" (तफ़हीमुल क़ुरआन-2, पे.-148)

सब्र हासिल करने के ज़रिये

हालाँकि इंसान की बहुत-सी खूबियाँ फ़ितरी होती हैं और वह पैदाइशी तौर पर उनकी कम या ज़्यादा सलाहियत साथ लेकर आता है । फिर भी अच्छी आदतों को अपनाने की कोशिश भी इनसानी ज़िम्मेदारियों में शामिल है । अगर इंसान कोशिश करके अच्छा न बन पाता और दौड़-धूप करके दूसरों को अच्छा न बना पाता तो वे तमाम आदेश ही बेमानी होकर रह जाते जो नफ़्स के तज़किए (मन की शुद्धि) और दूसरे कामों के सिलसिले में इस्लाम ने दिए हैं ।

इसलिए इंसान की इनसानियत का यह एक तक़ाज़ा है कि वह खुद नेक बने और अपने चारों तरफ़ नेकी फैलाने की कोशिश करता रहे जो कि सब्र से काम लिए बिना मुमकिन नहीं । इस हक़ीक़त की रौशनी में इस बात पर ग़ौर करना पड़ता है कि आख़िर वे कौन-से ज़रिये हैं जिन्हें अपनाकर सब्र जैसी पसन्दीदा खूबी को बढ़ाया जा सकता है ।

सोचने के ढंग में बदलाव

इस सिलसिले में सबसे पहले तो यह ज़ेहन में रखना होगा कि इनसानी ज़िन्दगी के लिए मुसीबतें और परेशानियाँ लाज़िमी चीज़ हैं ।

हज़रत अबू हुरैरा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि मोमिन की मिसाल खेती की-सी है कि उसको हवाएँ बराबर हिलाती रहती हैं । और मोमिन को हमेशा मुसीबतें पहुँचती रहती हैं । (हदीस : तिरमिज़ी)

मुतर्रिफ़ बिन अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* अपने बाप से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि आदम का बेटा इस हालत में बनाया गया है कि उसके पहलू में निन्यानवे मुसीबतें हैं । अगर वह इन मुसीबतों से बच भी जाए तो बुढ़ापे का शिकार हो जाता है । (हदीस : तिरमिज़ी)

जब इंसान इस हक़ीक़त को सामने रखेगा कि आदम की औलाद में से कोई भी ग़म के काँटे से नहीं बचता तो वह बहुत हद तक इस वहम से भी बचा रहेगा कि दुनिया में सिर्फ़ वही एक ग़म का मारा है, बाक़ी सारी दुनिया तो ऐश व आराम के झूले झूल रही है । जब कोई भी दिल ग़म के काँटे की चुभन से बचा नहीं है तो फिर अगर उसके सामने कोई दिक़्क़त आ खड़ी हुई तो आख़िर कौन-सी ऐसी क़ियामत टूट पड़ी?

फिर यह भी एक हक़ीक़त है कि हर मुसीबत से बड़ी मुसीबत दुनिया में मौजूद है । जिस वक़्त किसी परेशानी से दोचार होना पड़े तो यह याद कर लेना चाहिए कि इस तकलीफ़ से कोई ज़्यादा बड़ी तकलीफ़ भी तो आ सकती थी । इस तरीक़े से सोचा जाएगा तो आनेवाली तकलीफ़ आसान और हल्की हो जाएगी क्योंकि यह हक़ीक़त अपनी जगह बिल्कुल साबित है कि इनसानी ज़िन्दगी बड़ी से बड़ी बला की भेंट चढ़ सकती है । इसलिए अगर हम किसी ऐसी आज़माइश और मुसीबत में घिरे हुए हैं जो दूसरी आज़माइश और मुसीबतों से छोटी है तो यह चीज़ दिल के लिए तसल्ली और हिम्मत का ज़रिया होनी चाहिए ।

सहाबा किराम *(रज़ि.)* को नबी *(सल्ल.)* से जो बेपनाह मुहब्बत थी उसका नतीजा यह था कि नबी *(सल्ल.)* की ज़ात और मौजूदगी उनके लिए सबसे प्यारी चीज़ थी । इसलिए जब आप *(सल्ल.)* उनके बीच न रहे तो नबी *(सल्ल.)* के इन प्रेमियों पर ग़म का वह पहाड़ टूट पड़ा कि ज़िन्दगी की आम मुसीबतें उसके सामने कुछ भी न थीं । इसके बाद हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* जब किसी की मातमपुर्सी के लिए जाते तो फ़रमाते:

> "सब्र में कोई मुसीबत नहीं और रोने में कोई फ़ायदा नहीं, अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की मौत को याद करो तो तुम्हें अपनी मुसीबत बहुत कम मालूम होगी ।"

अगर इंसान अपनी सोच का अन्दाज़ ऐसा कर ले कि किसी मुसीबत को सामने देखकर उसपर रोने-पीटने के बजाय यह सोचे कि उससे बड़ी मुसीबत भी आ सकती थी तो उसके लिए सब्र करना ज़्यादा आसान हो जाएगा ।

अपने सोचने के तरीक़े को इस तरह बदलने के अलावा इस्लाम के दो अक़ीदे भी ऐसे हैं कि उनपर ईमान जितना ज़्यादा पक्का होगा उतना ही सब्र करनेवाला बनना आसान हो जाएगा ।

तक़दीर पर ईमान

सब्र की ख़ूबी पैदा करने के लिए तक़दीर पर ईमान बहुत ही कामयाब नुस्ख़ा है, बस शर्त यह है कि इसका मतलब ठीक उसी तरह लिया जाए जिस तरह नबी (सल्ल.) ने सिखाया था । बहुत-से लोग नादानी से तक़दीर पर ईमान का मतलब यह लेते हैं कि हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाओ और कुछ न करो और ज़ेहन में यह बैठा लो कि जो कुछ होना है वह तो होकर ही रहना है, इसलिए दौड़-धूप करने का आख़िर फ़ायदा ही क्या है । हालाँकि जो तक़दीर पर ईमान अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने सिखाया था वह यह नहीं है कि तकलीफ़ दूर करने या सुकून और आराम हासिल करने के लिए कोशिश न की जाए, बल्कि यह है कि इंसान बलाओं से बचने और कामयाबी और सफलता हासिल करने के लिए कोशिश तो ज़रूर करे, मगर इसके बाद भी अगर वह फ़ौरी तौर पर मक़सद हासिल न कर सके तो ज़्यादा परेशान न हो और यक़ीन रखे कि अगर वह चीज़ उसकी क़िस्मत में लिखी गई है तो उसे ज़रूर मिल जाएगी और अगर नहीं लिखी गई है तो दुनिया की कोई ताक़त उसे उसका मालिक नहीं बना सकती । इसलिए उसे सब्र करना चाहिए, जिसका बेहतरीन बदला अल्लाह उसे ज़रूर देगा और इसके साथ ही उसे यह तसल्ली भी दे दी गई है कि अल्लाह क़रीब है । वह न तो किसी पुकारनेवाले की पुकार को सुनी-अनसुनी करता है, न किसी कोशिश करनेवाले की कोशिश को बेकार जाने देता है । इसलिए उसे तसल्ली रखनी चाहिए कि उसकी मेहनत और कोशिशों का बदला उसे ज़रूर मिलेगा चाहे वह किसी भी रूप में मिले ।

आख़िरत पर ईमान

दिल में सब्र पैदा करने का दूसरा बेहतरीन और कामयाब नुस्ख़ा यह है कि आख़िरत पर यक़ीन को मज़बूत से मज़बूत किया जाए । सब्र की वे सारी शक्लें जो ऊपर बयान हो चुकी हैं, उनमें से कोई एक शक्ल भी ऐसी नहीं जिसका आख़िरत पर यक़ीन से गहरा ताल्लुक़ न हो :

- भुखमरी या माली नुक़सान की तकलीफ़ हो,
- या जिस्मानी रंज व ग़म की तकलीफ़ें हों,
- या अपनों की जुदाई या मौत का ग़म सहना पड़ रहा हो,
- या लोगों की नश्तरों जैसी ज़बानों के चरके लग रहे हों,
- या दीन की कामयाबी की राह में तरह-तरह के दुख झेलने पड़ रहे हों,
- या बुराई पर उभारनेवाली भावना हमले पर हमले कर रही हो और उसका मुक़ाबला करना मुश्किल महसूस हो रहा हो,
- या लम्बी-लम्बी मुद्दतें गुज़र जाने के बाद भी ज़ाहिर में दुआओं के क़बूल होने के आसार नज़र न आ रहे हों,
- या कामयाबी और ग़लबे का एहसास घमण्ड और ग़ुरूर और बड़े होने की भावना की तरफ़ बुरी तरह धकेल रहा हो ।

मतलब यह की जो हालात भी पेश आएँ । यह यक़ीन हमेशा सीधी राह पर जमे रहने में मदद करता है, क्योंकि यह गुज़रनेवाली, दुखों की शिकार ज़िन्दगी ख़त्म हो जानेवाली और बाक़ी न रहने वाली है और मौत के बाद मिलनेवाली ज़िन्दगी हमेशा-हमेशा क़ायम रहनेवाली है ।

जब ज़िन्दगी ख़ुद ही बहुत ही थोड़ी है तो उसके अन्दर आने वाली परेशानी के लम्हे तो उससे भी ज़्यादा कम हैं । ये तो बहुत जल्द ख़त्म हो जानेवाले हैं!

ख़ुशी के उड़ जानेवाले दिन हों या ग़म की लम्बी-लम्बी रेंगनेवाली रातें,

ज़माने का हर पल लाज़िमी तौर पर अंजाम को पहुँचेगा और आदम (अलै.) की औलाद इस वक़्ती चक्कर से निकलकर न ख़त्म होनेवाली दुनिया में हर हाल में दाख़िल होगी। जिसने वहाँ कामयाबी और बुलन्दी हासिल कर ली वही हक़ीक़त में कामयाब है :

> "जो कुछ तुम लोगों के पास है वह ख़त्म हो जाएगा और जो कुछ अल्लाह के पास है वही बाक़ी रहनेवाला है, और जिन लोगों ने सब्र (धैर्य) किया हम उनके अच्छे कामों के बदले में उनका अज्र (प्रतिदान) उनको ज़रूर देंगे।" (क़ुरआन, 16 : 96)

सब्र के फ़ायदे और अहमियत

क़ुरआन, हदीस और बुज़ुर्गों के कथनों में सब्र की जितनी अहमियत बयान हुई है उसको देखकर सोचना पड़ता है कि सब्र में वे क्या दीनी व दुनियवी फ़ायदे हैं जिनकी वजह से उसे इतना पसन्दीदा ठहराया गया है ।

सब्र मग़फ़िरत का ज़रिया है

पहली बात तो यह है कि क़ुरआन मजीद की कई आयतें साफ़ तौर पर यह बताती हैं कि सब्र इंसान की मग़फ़िरत का एक बहुत बड़ा ज़रिया है । क़ुरआन में सब्र करनेवालों के खुशगवार अंजाम का हाल बताते हुए फ़रमाया गया कि जन्नत के हर दरवाज़े से फ़रिश्ते उनपर दाख़िल हो-होकर कहेंगे :

"तुमपर सलाम है उसके बदले में जो तुमने (ज़िन्दगी में) सब्र से काम लिया ।" (क़ुरआन, 13 : 24)

क़ुरआन में एक दूसरी जगह कहा गया है :

"सब्र करनेवालों को उनका बदला बेहिसाब मिलेगा ।"

(क़ुरआन, 39 : 10)

क़ुरआन में एक दूसरी जगह कहा गया है :

"क्या ही अच्छा बदला है काम करनेवालों का! जिन्होंने सब्र किया, और वे अपने रब पर भरोसा करते थे ।"

(क़ुरआन, 29 : 58-59)

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया :

"मोमिन को जो मुसीबत भी पहुँचती है, थकावट हो या ग़म या बीमारी, यहाँ तक कि फ़िक्र (भी) जो उसे रंजीदा करे, उसकी वजह से भी अल्लाह तआला उसके गुनाह दूर कर देता है।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया :

"अल्लाह तआला फ़रमाता है कि जब मैं अपने किसी मोमिन बन्दे की किसी प्यारी चीज़ को इस दुनिया से उठा लेता हूँ, फिर वह सवाब की नीयत से सब्र करता है तो मेरे पास उसके लिए बदला सिर्फ़ जन्नत ही है।"

(हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अनस (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया :

"जिस मुसलमान के तीन ऐसे बच्चों का इन्तिक़ाल हो जाए जो अभी गुनाह की उम्र को न पहुँचे हों तो उन बच्चों पर बहुत रहमत होने की वजह से अल्लाह तआला उस शख़्स को जन्नत में दाख़िल करेगा।"

(हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि.) से रिवायत है कि औरतों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) से कहा कि हमारे लिए (नसीहत का) एक दिन तय कर दीजिए। इस तरह (आप सल्ल. ने उनके लिए एक दिन तय कर दिया और) उन्हें नसीहत की और फ़रमाया कि जिस औरत के तीन बच्चे मर गए हों तो वे उसके लिए जहन्नम की आग से ओट बन जाएँगे। (इसपर) एक औरत ने पूछा कि अगर दो हों तो। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि दो का भी यही हुक्म है। (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अबू मूसा अश्अरी (रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया :

"जब किसी बन्दे का बेटा मर जाता है तो अल्लाह तआला फ़रिश्तों से फ़रमाते हैं कि क्या तुमने मेरे बन्दे के बेटे की रूह क़ब्ज़ कर ली?

वे कहते हैं कि जी हाँ। अल्लाह तआला फ़रमाते हैं कि क्या तुमने उसके दिल के फल को ले लिया? वे कहते हैं कि जी हाँ । अल्लाह तआला पूछते हैं कि फिर मेरे बन्दे ने क्या कहा? वे कहते हैं कि उसने आपकी तारीफ़ की और **'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन'** (बेशक हम अल्लाह के हैं और बेशक उसी की ओर हमें पलटकर जाना है) पढ़ा । अल्लाह तआला फ़रमाते हैं कि मेरे बन्दे के लिए जन्नत में एक घर बनाओ और उसका नाम 'बैतुल-हम्द' (तारीफ़ और शुक्र का घर) रखो ।'' (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* से रिवायत है कि मैं अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की बीमारी के दर्मियान आपके पास हाज़िर हुआ । मैंने आप *(सल्ल.)* को छुआ तो आपको बहुत तेज़ बुख़ार में पाया । मैंने कहा कि आपको बहुत तेज़ बुख़ार है । और यह इस वजह से है कि आपको दुहरा अज्र (प्रतिदान) है । आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि हाँ जिस मुसलमान को भी कोई तकलीफ़ पहुँचती है तो उसके गुनाह इस तरह झड़ जाते हैं जैसे पेड़ के पत्ते झड़ जाते हैं । (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अबू हुरैरा *(रज़ि.)* से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया :

''मोमिन मर्द और मोमिन औरत की जान, औलाद और माल पर बराबर आज़माइश आती रहती है, यहाँ तक कि वह अल्लाह तआला से इस हालत में मिलता है कि उसपर कोई गुनाह नहीं होता ।''
(हदीस : तिरमिज़ी)

जब एक सहाबी हज़रत अशअस *(रज़ि.)* को बेटे का सदमा बरदाश्त करना पड़ा तो हज़रत अली *(रज़ि.)* ने उनसे फ़रमाया :

''अशअस! अगर अपने बेटे पर ग़म करोगे तो तुम्हारी मुहब्बत का यही तक़ाज़ा है और अगर सब्र करोगे तो अल्लाह तआला की तरफ़ से हर मुसीबत में बदला मिलेगा ।

अशअस! अगर तुमने सब्र किया तो अल्लाह का फ़ैसला हो चुका है ।

तुम्हें बेहतरीन बदला मिलेगा और अगर घबरा गए तो भी अल्लाह का फ़ैसला अपनी जगह पर है ।

अशअस! तुम्हारा बेटा तुम्हें खुश तो करता था मगर वह एक इम्तिहान था । अब उसने तुम्हें दुखी किया तो इसमें सवाब और रहमत है ।''

सब्र अल्लाह की मदद का ज़रिया

यह बात जानने की है कि सब्र से सिर्फ़ आख़िरत में ही कामयाबी नहीं मिलती बल्कि दुनिया में भी मिलती है । क़ुरआन की आयतें, हदीसें और दुनिया के वाक़िआत से यह स्पष्ट हो जाता है कि सब्र करनेवाला आख़िरकार इस दुनिया की ज़िन्दगी में भी कामयाबी पाता है । क़ुरआन मजीद में बनी इसराईल का बहुत-सी जगहों पर ज़िक्र आया है । बनी इसराईल का इतिहास बड़े उतार-चढ़ाव से गुज़रता रहा है । जब उन लोगों में ख़राबियाँ फैल जाती थीं तो उनपर खुदा की तरफ़ से अज़ाब आने लगते थे और जब वे अपने आमाल (कर्मों) में सुधार कर लेते थे और सब्र का रवैया अपनाते थे तो उन्हें कामयाबियाँ हासिल होना शुरू हो जाती थीं और वे बुलन्दी हासिल कर लेते थे ।

क़ुरआन में अल्लाह तआला ने उनके बारे में फ़रमाया है :
''और जब उन्होंने सब्र किया तो हमने उनमें से बहुत-से पेशवा बना दिए जो हमारे हुक्म से राह दिखाते थे ।'' (क़ुरआन, 32 : 24)

इसी तरह क़ुरआन में एक और जगह बनी इसराईल और फ़िरऔन की आपसी कशमकश में बनी इसराईल के कामयाब होने, फ़िरऔन और उसकी क़ौम के नाकाम होने का ज़िक्र करते हुए अल्लाह ने फ़रमाया :

''और उनकी जगह हमने उन लोगों को जो कमज़ोर बनाकर रखे गए थे (यानी बनी इसराईल), इस सरज़मीन (भू-भाग) के पूरब और पश्चिम का वारिस बना दिया जिसे हमने बरकतों से मालामाल कर रखा था। इस तरह बनी इसराईल के हक़ में तेरे रब का अच्छा वादा पूरा हुआ क्योंकि उन्होंने सब्र से काम लिया था, और फ़िरऔन और

उसकी क़ौम का वह सबकुछ बरबाद कर दिया गया, जो वे बनाते और चढ़ाते थे ।'' (क़ुरआन, 7 : 137)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल०)* ने फ़रमाया कि जिसपर मुहताजी और तंगी आए और उसने उसे लोगों के सामने बयान किया तो उसकी मुहताजी और तंगी दूर न हुई, और जिसपर मुहताजी और तंगी आए और उसने उसे अल्लाह ही के आगे बयान किया तो क़रीब है कि अल्लाह उसे जल्द या देर से रोज़ी अता करेगा । (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अली *(रज़ि०)* का फ़रमान है :

''सब्र करनेवाला अपनी कामयाबी को हाथ से नहीं जाने देता, वक़्त चाहे कितना ही गुज़रे ।''

मतलब यह है कि चाहे कितनी ही देर हो जाए सब्र करनेवाला आख़िरकार कामयाब ज़रूर होगा ।

आख़िरी बात

आख़िर में सब्र के बारे में कुछ और फ़ायदेमन्द बातें जान लेना ज़रूरी है। पहली बात यह कि सब्र हक़ीक़त में वही होता है जो सदमे के शुरू ही में किया जाए वरना आख़िर में मजबूरन बड़े से बड़े बेसब्रे को भी सब्र करना ही पड़ता है। आख़िर इंसान कब तक रो-धो सकता है, कब तक फ़रयाद कर सकता है, कब तक चीख़-चिल्ला सकता है, फ़रयाद और नौहा कर सकता है और कब तक ग़म और दुख को अपनी जान से लगाए रख सकता है; आख़िर तो उसे चुप होना ही पड़ता है। इसलिए सब्र वह चुप नहीं जो इंसान आख़िरकार मजबूरन अपनाता है, बल्कि वह बरदाश्त और ज़ब्त है जो सदमे की ज़्यादती के वक़्त किया जाता है।

हज़रत अनस बिन मालिक *(रज़ि०)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल०)* का गुज़र एक औरत के पास से हुआ जो एक क़ब्र के पास बैठी रो रही थी। नबी *(सल्ल०)* ने उससे फ़रमाया कि अल्लाह से डर और सब्र कर। (वह औरत नबी *सल्ल०* को पहचानती नहीं थी) उसने कहा कि मेरे पास से चले जाओ, तुमपर वह मुसीबत नहीं पड़ी जो मुझपर पड़ी है और न तुम इस मुसीबत को जानते ही हो। (इसपर नबी *सल्ल०* वहाँ से चले गए और बाद में) उस औरत से कहा गया कि ये तो नबी *(सल्ल०)* थे। इसपर वह नबी *(सल्ल०)* के दरवाज़े पर आई तो उसने वहाँ कोई दरबान न पाया। उसने (माफ़ी माँगते हुए) नबी *(सल्ल०)* से कहा कि मैं आपको पहचानती न थी (इसलिए ग़लती हो गई)। इसपर नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया कि सब्र तो वही है जो सदमे के शुरू में हो। (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अली *(रज़ि०)* ने फ़रमाया :

"जिसने खुद से सब्र कर लिया उसी ने आज़ाद और शरीफ़ाना सब्र किया, नहीं तो नासमझों की तरह तसल्ली तो हो ही जाएगी।"

हज़रत अली *(रज़ि०)* ही का एक और कथन है :

"अगर इज़्ज़तदार लोगों की तरह सब्र कर लिया तो ठीक, नहीं तो

जानवरों की तरह चुप होना पड़ेगा । ग़म ताज़ियाना (कोड़ा) बनकर तुम्हें ख़ुद चुप करा देगा ।"

सब्र के सिलसिले में दूसरी ज़रूरी बात यह है कि सब्र करनेवालों के लिए चूँकि ज़िन्दगी भलाई हासिल करने का एक ज़रिया है, इसलिए उसके सब्र का एक तक़ाज़ा यह भी है कि कितने ही तकलीफ़देह हालात पैदा क्यों न हों, वह मौत कभी न माँगे। मौत की ख़ाहिश करना सही मानों में बे-सब्री ही की एक शक्ल है क्योंकि मौत की तमन्ना वही करता है जो आज़माइशों का मुक़ाबला न कर सकता हो और उनसे छुटकारा पाने की तमन्ना रखता हो ।

हज़रत अनस (रज़ि.) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया कि तुममें से कोई आदमी किसी तकलीफ़ की वजह से, जो उसपर आ पड़ी हो, मौत की तमन्ना न करे और उसे चाहिए कि (यूँ) कहे कि ऐ अल्लाह! मुझे ज़िन्दा रख जब तक मेरी ज़िन्दगी मेरे लिए (मौत से) बेहतर है । और मुझे मौत दे देना जबकि मौत मेरे लिए (ज़िन्दगी से) बेहतर हो ।

(हदीस : तिरमिज़ी)

तीसरी ज़रूरी बात यह है कि सब्र करने से यह मुराद नहीं है कि इंसान जिस मुसीबत में पड़ गया हो उससे निकलने की कोशिश न करे । बेशक अपनी तकलीफ़ों और परेशानियों को दूर करने की कोशिश करना एक बिल्कुल सही तरीक़ा है । अगर कोई बीमार पड़ जाए तो उसे अपनी बीमारी का इलाज कराना चाहिए । अगर मुफ़लिसी और मुहताजी छा गई हो तो रोज़ी हासिल करने के लिए जिद्दोजुहद करनी चाहिए । अगर कोई शख़्स किसी ग़लतफ़हमी के कारण हमारे पीछे पड़ गया हो तो उसकी ग़लत- फ़हमी दूर करने की कोशिश की जानी चाहिए । अल्लाह के दीन (इस्लाम) की ख़िदमत के सिलसिले में भी इतनी अक़्ल से काम लेना चाहिए कि इंसान ख़ाह-मख़ाह लोगों को अपना दुश्मन न बना ले । हाँ, अलबत्ता सब्र का यह एक अहम तक़ाज़ा है कि यह सारी जिद्दोजुहद सुकुन, हौसले और सलीक़े से की जाए, न कि रोना-पीटना, चीख़-पुकार और शिकवा-शिकायत करते हुए । और फिर अगर जिद्दोजुहद के बावजूद ये मुसीबतें कम न हों या ऐसी तकलीफ़ों का सामना करना पड़ जाए जिनका कोई इलाज ही नहीं, मिसाल के तौर पर किसी प्यारे रिश्तेदार की मौत या कोई मर्ज़ जिसका इलाज न हो या लोगों की ख़ाह-मख़ाह की दुश्मनियाँ, तो उस हालत में सब्र और बर्दाश्त

से काम लिया जाए । मुसीबतों के आगे कभी हार नहीं मानी जाए और जिस्म, दिल और ज़बान तीनों पर क़ाबू रखा जाए ताकि मजनूँ जैसी हरकतें न होने लगें, न शिकायत भरे ख़यालात ज़ेहन को परेशान करने लगें और न बेक़रार होकर आह व फ़रयाद करने लगे ।

चौथी याद रखनेवाली बात यह कि सब्र के बेपनाह फ़ायदों के बावजूद इंसान के लिए ज़रूरी है कि वह अल्लाह तआला से अमन और आफ़ियत माँगता रहे और कभी भी इस बात की तमन्ना न करे कि परेशानियाँ और मुसीबतें आएँ और वह उनके मुक़ाबले में सब्र करके अपने मक़ाम को ऊँचा करे । आज़माइशों का अल्लाह की तरफ़ से आ जाना और उनपर सब्र करना एक बात है, मगर आज़माइशें माँगना ताकि सब्र करने की फ़ज़ीलत (सौभाग्य) हासिल हो, एक बिलकुल दूसरी ही बात है । इंसान बुनियादी तौर पर कमज़ोर है, उसमें इतनी ताक़त है ही नहीं कि वह मुहँ माँगी आज़माइशों का मुक़ाबला कर सके । एक बार नबी *(सल्ल.)* ने एक आदमी को दुआ माँगते हुए सुना :

"ऐ अल्लाह मैं तुझसे सब्र माँगता हूँ ।"

इसपर नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि तूने तो अल्लाह से बला माँगी । तू अल्लाह से (सब्र के बजाय) आफ़ियत माँग ।

नबी *(सल्ल.)* के कहने का मतलब यह था कि अल्लाह तआला से यह दुआ न की जाए कि सब्र करने की नौबत आए बल्कि अल्लाह तआला से अमन, आफ़ियत और सलामती माँगी जाए । हाँ, अगर अल्लाह की तरफ़ से कोई मुसीबत आ ही जाए तो उसके मुक़ाबले में सब्र से काम लिया जाए और अल्लाह तआला से सब्र की तौफ़ीक़ माँगी जाए । मुसीबत आने से पहले ही सब्र माँगना और मुसीबत आ जाने पर सब्र की तौफ़ीक़ माँगने में बहुत फ़र्क़ है ।

हज़रत अनस बिन मालिक *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* किसी मुसलमान की अयादत (बीमारी का हाल पूछने) के लिए गए जो (बीमारी की वजह से) बहुत ही कमज़ोर हो चुका था, बिल्कुल चूज़े (मुर्ग़ी के बच्चे) की तरह । नबी *(सल्ल.)* ने उससे पूछा कि क्या तुम (अल्लाह तआला से) कोई दुआ किया करते थे या उससे वह चीज़ माँगते थे ।

उसने कहा : जी हाँ, मैं कहा करता था कि ऐ अल्लाह! जो अज़ाब मुझे

आख़िरत में देना है, वह जल्दी से दुनिया ही में दे ले। इसपर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया : सुब्हानल्लाह! तुममें इतनी ताक़त कहाँ है कि अल्लाह के अज़ाब को बर्दाश्त कर सको? तुमने इस तरह क्यों न दुआ की कि 'ऐ अल्लाह! हमें दुनिया में भी भलाई दे और आख़िरत में भी भलाई दे । और हमें दोज़ख़ के अज़ाब से बचाए रख ।' फिर नबी (सल्ल०) ने उसके लिए अल्लाह से दुआ की और अल्लाह ने उसे सेहत दे दी । (हदीस : मुस्लिम)

मतलब यह है कि मोमिन की तमन्ना तो हमेशा यही होनी चाहिए कि अल्लाह उसे आज़माइशों से बचाए रखे । हाँ, अगर किसी वक़्त अल्लाह की मरज़ी इसी में हो की आज़माइशें आएँ, तो फिर ज़रूर अल्लाह तआला से सब्र और बर्दाश्त की तौफ़ीक़ माँगी जाए क्योंकि उसकी तौफ़ीक़ के बिना सब्र मुमकिन ही नहीं है ।

पाँचवीं और आख़िरी ज़रूरी बात यह है कि जो शख़्स अक़्ल रखता है और कामयाबी हासिल करने की ख़ाहिश रखता है उसकी अक़्लमन्दी और नजात-पसन्दी का तक़ाज़ा यही है कि वह सब्र से काम ले क्योंकि बे-सब्री सरासर घाटे का सौदा है ।

हाय-तौबा करने, बेक़रार हो जाने और शोर-शराबा मचाने से न कोई मुसीबत टलती है, न कोई कामयाबी हासिल होती है — तो फिर किसी चीज़ के लिए इंसान सब्र से हासिल होनेवाले दुनिया और आख़िरत के दर्जे को क्यों खोए!

हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) बयान करते हैं कि एक दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) एक (बीमार) आराबी को देखने गए । नबी (सल्ल०) की आदत थी कि जब किसी मरीज़ को देखने जाते तो (उसे तसल्ली देते हुए) कहते :

> "(घबराने की) कोई बात नहीं । अल्लाह ने चाहा तो यह बीमारी (गुनाहों को) धो देगी ।"

इसलिए आप (सल्ल०) ने उस आराबी से भी ऐसा ही कहा । इसपर वह बोला कि आप इसे गुनाहों को धोनेवाली कहते हैं । कभी नहीं, यह तो एक जोश मारनेवाला बुख़ार है जिसने एक बूढ़े शख़्स को जकड़कर रखा है और उसे क़ब्र में पहुँचा देगा ।

(उसकी इस बे-सब्री को देखकर) नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अच्छा, तो फिर ऐसा ही होगा । (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अली (रज़ि.) का फ़रमान है :

"जिसे सब्र ने रिहाई न दी, उसे बे-सब्री ने तबाह कर दिया।"

ध्यान रहे कि बे-सब्री चाहे कितनी ही ज़्यादा क्यों न हो, आख़िर तो उसका ज़ोर टूट ही जाता है और इंसान बे-क़रारी ज़ाहिर करने से रुकने पर मजबूर हो ही जाता है। तो फिर आख़िर क्यों न वक़्त पर ही सब्र से काम लेकर भलाई हासिल कर ली जाए।

एक नौजवान की जवान बीवी और उसका बच्चा, जो अभी पैदा हुआ था, दोनों का एक ही दिन में इन्तिक़ाल हो गया। नौजवान पर ग़म का पहाड़ टूट पड़ा और इस ग़म ने ज़ेहन पर कुछ ऐसा असर किया कि वह आबादी को छोड़कर ज़्यादातर क़ब्रिस्तान ही में वक़्त गुज़ारने लगा। एक दिन जब वह अपनी बीवी और बच्चे की क़ब्र के पास बैठा अपने दुख-दर्द में व्यस्त था तो एक बूढ़ा उसके पास आकर खड़ा हो गया। वह पहले तो चुपचाप खड़ा उसे रोते देखता रहा। और फिर अचानक क़हक़हा मारकर हँस पड़ा। नौजवान ने हैरत से उसकी तरफ़ देखा। कैसा ज़ालिमों जैसा बर्ताव था उस बूढ़े आदमी का! अगर कोई किसी से हमदर्दी न कर सके तो आख़िर उसके ग़म और मुसीबत पर क़हक़हे भी क्यों लगाए —!

उस बूढ़े आदमी ने नौजवान की आँखों में हैरत से देखते हुए कहा : "मुझे हँसी इस बात पर आई कि तुम आख़िर क्या पाने के लिए इस वीराने में बैठ रहे हो।" फिर उसने एक क़ब्र की तरफ़ इशारा करते हुए कहा : "वह देखो, वह भूरी-भूरी क़ब्र, वह मेरी बीवी की क़ब्र है जिसे दुनिया से गए हुए तीस साल गुज़र चुके हैं। और इतना ही वक़्त गुज़र चुका है मुझे इस वीराने में फिरते हुए। मगर आज तक मुझे कुछ भी हासिल न हो सका। अगर मैं तीस सालों में यहाँ से कुछ न पा सका तो तुम आख़िर क्या हासिल कर लोगे —?

जब हसन बिन हसन बिन अली (रज़ि.) की मौत हुई तो उनकी बीवी एक साल के लिए उनकी क़ब्र पर ख़ेमा गाड़कर बैठी रहीं। फ़िर आख़िर उस ख़ेमे को उखाड़कर चली गईं तो लोगों ने किसी पुकारनेवाले को पुकारते सुना :

"क्या उन लोगों ने जो चीज़ गुम की थी उसे पा लिया ?"

इसपर किसी दूसरे ने जवाब दिया :

"नहीं बल्कि मायूस हुए और लौट गए।" (हदीस : बुख़ारी)